

ब्रिटिश आर्थिक नीतियों से भारतीय कृषि अर्थव्यवस्था का पतन**Nadim Ahmad****Research Scholar, Department of History****Government Degree College, Budaun,****Mahatma Jyotiba Phule Rohilkhand University, Bareilly****Dr. Anil kumar****Assistant Professor, Head of History Department****Government Degree College, Budaun.****Mahatma Jyotiba Phule Rohilkhand University Bareilly****सार**

ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन के तहत भारत की पारंपरिक कृषि अर्थव्यवस्था का पतन शोषणकारी आर्थिक नीतियों का प्रत्यक्ष परिणाम था, जिसने स्वदेशी कल्याण पर ब्रिटिश वाणिज्यिक हितों को प्राथमिकता दी। यह शोधपत्र स्थायी बंदोबस्त, रैयतवाड़ी और महालवाड़ी प्रणालियों जैसी भारी भूमि राजस्व प्रणालियों जैसे तंत्रों के माध्यम से भारत की कृषि संरचना को व्यवस्थित रूप से नष्ट करने की जांच करता है, जिसने किसानों पर असहनीय वित्तीय बोझ डाला। नील, अफीम और कपास जैसी नकदी फसलों की जबरन खेती के साथ, इन नीतियों के कारण खाद्यान्न उत्पादन में गिरावट आई, बार-बार अकाल पड़े और ग्रामीण क्षेत्रों में व्यापक दरिद्रता आई। ग्रामीण उद्योगों के विऔद्योगीकरण ने कृषि पर ग्रामीण निर्भरता को और बढ़ा दिया, जिससे सामाजिक-आर्थिक संकट और बढ़ गया। ऐतिहासिक अभिलेखों, आर्थिक आंकड़ों और विद्वत्तापूर्ण विश्लेषणों के आधार पर, यह अध्ययन भारतीय कृषि के एक आत्मनिर्भर प्रणाली से औपनिवेशिक शोषण के तहत ठहराव और भेद्यता से चिह्नित एक प्रणाली में परिवर्तन पर प्रकाश डालता है। निष्कर्ष इस बात को रेखांकित करते हैं कि किस प्रकार ब्रिटिश आर्थिक नीतियों ने न केवल भारत की कृषि उत्पादकता को बाधित किया, बल्कि उत्तर-औपनिवेशिक भारत में सतत ग्रामीण गरीबी और कृषि संकट की नींव भी रखी।

मुख्य शब्द: ब्रिटिश, आर्थिक, कृषि, अर्थव्यवस्था

परिचय

ब्रिटिश औपनिवेशिक वर्चस्व से पहले भारत में एक मजबूत और काफी हद तक आत्मनिर्भर कृषि अर्थव्यवस्था थी। सदियों से चली आ रही पारंपरिक ज्ञान पर आधारित और स्थानीय उद्योगों द्वारा समर्थित इसकी कृषि पद्धतियों ने बहुसंख्यक ग्रामीण आबादी को पोषण दिया और खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित की। हालाँकि, ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन के आगमन के साथ-विशेष रूप से 18वीं शताब्दी के उत्तरार्ध से-यह संतुलन व्यवस्थित रूप से बाधित हो गया। ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी और बाद में, ब्रिटिश क्राउन ने राजस्व निष्कर्षण को अधिकतम करने और ब्रिटिश औद्योगिक हितों का समर्थन करने के उद्देश्य से शोषणकारी आर्थिक नीतियों की एक श्रृंखला लागू की। इन नीतियों ने पूरे उपमहाद्वीप में भूमि स्वामित्व पैटर्न, राजस्व संग्रह तंत्र और फसल पद्धतियों को मौलिक रूप से बदल दिया। सबसे महत्वपूर्ण बदलावों में से एक बंगाल में स्थायी बंदोबस्त, मद्रास और बॉम्बे प्रेसिडेंसियों में रैयतवाड़ी प्रणाली और उत्तरी भारत में महालवाड़ी प्रणाली जैसी नई भूमि राजस्व प्रणालियों के लागू होने के साथ हुआ। इन प्रणालियों ने कठोर कर दायित्व पेश किए जो कृषि उतार-चढ़ाव और फसल विफलताओं की अनदेखी करते थे, जिससे किसान कर्ज, भूमि अलगाव और कई मामलों

में, विपन्नता में मजबूर हो गए। इसी समय, अंग्रेजों ने किसानों को नील, कपास, अफीम और जूट जैसी वाणिज्यिक नकदी फसलों के उत्पादन के लिए मजबूर किया - अक्सर खाद्यान्न की खेती की कीमत पर - जिसके कारण खाद्यान्न की उपलब्धता कम हो गई और लगातार अकाल पड़े। इसके अलावा, ब्रिटेन की औद्योगिकीकरण नीति, जिसने ब्रिटेन से सस्ते निर्मित माल के आयात के माध्यम से स्थानीय कुटीर और हस्तशिल्प उद्योगों को नष्ट कर दिया, कई कारीगरों और शिल्पकारों को कृषि में लौटने के लिए मजबूर किया, जिससे भूमि पर दबाव बढ़ गया और ग्रामीण क्षेत्रों में बेरोजगारी और अल्परोजगार बढ़ गया। यह शोधपत्र औपनिवेशिक शासन के तहत भारत की कृषि अर्थव्यवस्था के व्यवस्थित पतन की पड़ताल करता है। यह जांचता है कि कैसे ब्रिटिश भूमि राजस्व नीतियों, कृषि के वाणिज्यिक अभिविन्यास और ग्राम-स्तरीय उद्योगों के क्षरण ने सामूहिक रूप से पारंपरिक भारतीय कृषि के ठहराव और अंततः पतन को जन्म दिया। ऐतिहासिक दस्तावेजों, आर्थिक आंकड़ों और विद्वानों की व्याख्याओं के एक महत्वपूर्ण विश्लेषण के माध्यम से, इस अध्ययन का उद्देश्य भारत की ग्रामीण अर्थव्यवस्था पर औपनिवेशिक आर्थिक रणनीतियों के दीर्घकालिक प्रभाव और स्वतंत्रता के बाद की अवधि में उनके दीर्घकालिक प्रभावों को उजागर करना है।

साहित्य की समीक्षा

ब्रिटिश शासन के तहत भारतीय कृषि अर्थव्यवस्था का पतन व्यापक विद्वानों की बहस और ऐतिहासिक शोध का विषय रहा है। इतिहासकारों, अर्थशास्त्रियों और उत्तर-औपनिवेशिक सिद्धांतकारों ने भारत की कृषि संरचना पर औपनिवेशिक नीतियों के दूरगामी प्रभावों की जांच की है, जिसमें इस बात पर प्रकाश डाला गया है कि किस तरह शोषणकारी भूमि राजस्व प्रणाली, कृषि का व्यावसायीकरण और स्थानीय उद्योगों के विनाश ने आर्थिक ठहराव और ग्रामीण दरिद्रता में योगदान दिया। आर.सी. दत्त अपने मौलिक कार्य "भारत का आर्थिक इतिहास" (1901) में ब्रिटिश भारत की आर्थिक नीतियों की आलोचनात्मक जांच करने वाले शुरुआती विद्वानों में से थे। उन्होंने तर्क दिया कि औपनिवेशिक राज्य का राजस्व अधिकतमकरण पर ध्यान, विशेष रूप से स्थायी बंदोबस्त के माध्यम से, किसानों को बेदखल करने और अनुपस्थित जमींदारी के उद्भव का कारण बना। दत्त ने इस बात पर जोर दिया कि वास्तविक कृषि उत्पादकता से अलग राजस्व प्रणाली की कठोरता ने किसानों को कर्ज और अकाल के चक्र में धकेल दिया। दादाभाई नौरोजी ने "भारत में गरीबी और गैर-ब्रिटिश शासन" (1901) में ड्रेन थ्योरी की शुरुआत की, जिसमें तर्क दिया गया कि ब्रिटिश नीतियों ने पुनर्निवेश के बिना भारत से व्यवस्थित रूप से धन निकाला, जिससे आर्थिक गिरावट आई। उन्होंने इस बात पर प्रकाश डाला कि कैसे भूमि कर, नकदी फसल निर्यात से लाभ और ब्रिटिश अधिकारियों के वेतन ने भारतीय किसानों की गरीबी में योगदान दिया। बिपन चंद्र ने "भारत का स्वतंत्रता संग्राम" (1988) और "आधुनिक भारत" (1972) में इन विचारों को विस्तार से बताया, जिसमें विश्लेषण किया गया कि कैसे उपनिवेशवाद के तहत कृषि के जबरन व्यावसायीकरण ने खाद्य फसलों की तुलना में नील, कपास और अफीम जैसी निर्यात-उन्मुख नकदी फसलों को प्राथमिकता दी, जिससे खाद्य असुरक्षा और बार-बार अकाल पड़े। चंद्र ने स्वदेशी उद्योगों के पतन और विस्थापित कारीगरों के खेती में वापस लौटने के कारण कृषि पर पड़ने वाले परिणामी बोझ की ओर भी इशारा किया। तीर्थकर राय जैसे आधुनिक अर्थशास्त्री, "भारत का आर्थिक इतिहास 1857-1947" (2000) जैसी रचनाओं में, अधिक सूक्ष्म दृष्टिकोण प्रस्तुत करते हैं। औपनिवेशिक नीतियों के विघटनकारी प्रभाव को स्वीकार करते हुए, राय क्षेत्रीय विविधताओं और कुछ क्षेत्रों में कृषि विकास के उदाहरणों पर भी विचार करते हैं। उनका तर्क है कि ब्रिटिश नीतियों के प्रभाव समान रूप से नकारात्मक नहीं थे और स्थानीय परिस्थितियों, संस्थागत प्रतिक्रियाओं और वैश्विक आर्थिक बदलावों से प्रभावित थे।

पार्थ चटर्जी और रणजीत गुहा जैसे उत्तर-औपनिवेशिक विद्वानों ने औपनिवेशिक वर्चस्व और अधीनस्थ प्रतिरोध के व्यापक ढांचे के भीतर कृषि पतन को संदर्भित किया है। वे तर्क देते हैं कि ब्रिटिश आर्थिक नीतियों ने न केवल किसानों

को गरीब बनाया बल्कि पारंपरिक सामाजिक-राजनीतिक संरचनाओं और कृषि संबंधों को भी बाधित किया, जिससे ग्रामीण समुदायों की एजेंसी खत्म हो गई।

समकालीन अध्ययनों ने औपनिवेशिक कृषि नीतियों के पर्यावरणीय और पारिस्थितिक परिणामों पर भी ध्यान केंद्रित किया है। माधव गाडगिल और रामचंद्र गुहा जैसे लेखकों ने "दिस फ़िसर्ड लैंड" (1992) में तर्क दिया है कि ब्रिटिश भूमि उपयोग नीतियों के कारण वनों की कटाई, मिट्टी का क्षरण और टिकाऊ पारंपरिक कृषि प्रणाली का पतन हुआ। संक्षेप में, साहित्य में आम सहमति है कि ब्रिटिश औपनिवेशिक नीतियों का भारत की कृषि अर्थव्यवस्था पर हानिकारक प्रभाव पड़ा। जबकि शुरुआती राष्ट्रवादी इतिहासकारों ने आर्थिक शोषण और दरिद्रता पर जोर दिया, हाल के विद्वानों ने क्षेत्रीय अंतर, संस्थागत अनुकूलन और पारिस्थितिक परिणामों की जांच करते हुए जटिलता की परतें जोड़ी हैं। यह शोधपत्र औपनिवेशिक शासन के तहत भारतीय कृषि के पतन और ग्रामीण भारत पर इसके स्थायी प्रभावों का पता लगाने के लिए इन मूलभूत अध्ययनों पर आधारित है।

हम जानते हैं कि अंग्रेजों ने 1813 के बाद भारत पर एक तरह से मुक्त व्यापार की नीति लागू की और ब्रिटिश सूदखोरों के आक्रमण, विशेष रूप से सूती वस्त्रों का तुरंत पालन किया। आदिम तकनीकों से बना भारतीय सामान शक्तिशाली भाप से संचालित मशीनों द्वारा बड़े पैमाने पर उत्पादित वस्तुओं के साथ प्रतिस्पर्धा नहीं कर सकता था। ब्रिटिश आर्थिक नीतियों ने भारत को औपनिवेशिक अर्थव्यवस्था में बदल दिया, पारंपरिक प्रणालियों को खत्म कर दिया और स्थानीय उद्योगों को दबा दिया। भूमि राजस्व नीतियों ने किसानों पर बोझ डाला, जबकि विऔद्योगीकरण तथा शोषणकारी व्यापार प्रथाओं ने गरीबी को एवं गहरा कर दिया। भारत कच्चे माल के आपूर्तिकर्ता एवं ब्रिटिश सामानों के लिये बाज़ार बनकर रह गया। नौरोजी और दत्त जैसे विचारकों ने बड़े पैमाने पर धन के पलायन तथा आर्थिक अधीनता की आलोचना की। इस शोषण की विरासत ने भारत को स्वतंत्रता के बाद भी दीर्घकालिक चुनौतियों के साथ निर्धन बना दिया।

रेलवे बनने के बाद भारतीय उद्योगों, विशेषकर ग्रामीण कारीगरों के उद्योगों की बर्बादी और भी तेजी से बढ़ी। रेलवे ने ब्रिटिश मैनुफैक्चरर्स को देश के दूरस्थ गांवों में पारंपरिक उद्योगों तक पहुंचने और उखाड़ने में सक्षम बनाया। अमेरिकी लेखक के रूप में, डीएच बुकानन ने इसे रखा है, अलग-थलग आत्मनिर्भर गाँव का कवच स्टील रेल द्वारा छेदा गया था, और उसके जीवन का रक्त बह गया। कपास की बुनाई और कताई उद्योगों को सबसे ज्यादा नुकसान हुआ। रेशम और ऊनी वस्त्रों का कोई बेहतर प्रदर्शन नहीं हुआ और एक समान भाग्य ने लोहे, मिट्टी के बर्तनों, कांच, कागज, धातुओं, बंदूकों, शिपिंग, तेल- दबाव, टैनिंग और रंगाई उद्योगों को पीछे छोड़ दिया। विदेशी वस्तुओं की आमद के अलावा, ब्रिटिश विजय से उत्पन्न कुछ अन्य कारकों ने भी भारतीय उद्योगों को बर्बाद करने में योगदान दिया। अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध के दौरान ईस्ट इंडिया कंपनी और उसके नौकरों द्वारा बंगाल के कारीगरों पर किए गए अत्याचार ने उन्हें बाजार मूल्य से नीचे अपना माल बेचने और प्रचलित मजदूरी के नीचे अपनी सेवाएं देने के लिए मजबूर किया, सामान्य तौर पर भारतीय हस्तशिल्प को कंपनी द्वारा उनके निर्यात को दिए गए प्रोत्साहन से लाभ हुआ होगा, लेकिन इस उत्पीड़न का विपरीत प्रभाव पड़ा।

अठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दी के दौरान ब्रिटेन और यूरोप में भारतीय वस्तुओं के आयात पर लगाए गए उच्च आयात कर्तव्यों और अन्य प्रतिबंधों ने 1820 के बाद ब्रिटेन में भारतीय निर्माताओं को यूरोपीय बाजारों के आभासी समापन के लिए प्रेरित किया।

हस्तशिल्प और कारीगरों की बर्बादी

शहरी हस्तशिल्प उद्योग का अचानक और त्वरित पतन हुआ जिसने सदियों तक भारत का नाम पूरी सभ्य दुनिया के बाजारों में एक साथ रखा। यह पतन ब्रिटेन से सस्ती आयातित मशीन से निर्मित सामानों के साथ प्रतिस्पर्धा के कारण हुआ।

हस्तशिल्प और कारीगर वैकल्पिक रोजगार खोजने में विफल रहे। उनके लिए एकमात्र विकल्प कृषि में भीड़ लगाना था। इसके अलावा, ब्रिटिश शासन ने गांवों में आर्थिक जीवन के संतुलन को भी बिगाड़ दिया। ग्रामीण शिल्प के क्रमिक विनाश ने ग्रामीण इलाकों में कृषि और घरेलू उद्योग के बीच के संबंध को तोड़ दिया और इस तरह ग्रामीण अर्थव्यवस्था को नष्ट करने में योगदान दिया।

एक ओर, लाखों किसान, जिन्होंने अंशकालिक कटाई और बुनाई द्वारा अपनी आय को पूरक किया था, अब खेती पर अत्यधिक भरोसा करना था या दूसरी ओर, लाखों ग्रामीण कारीगरों ने अपनी पारंपरिक आजीविका खो दी और छोटे भूखंडों को धारण करने वाले कृषि मजदूर या छोटे किरायेदार बन गए। उन्होंने भूमि पर सामान्य दबाव को जोड़ा। इस प्रकार ब्रिटिश विजय ने देश के अनउद्योगीकरण का नेतृत्व किया और कृषि पर लोगों की निर्भरता बढ़ गई। पहले की अवधि के लिए कोई आंकड़े उपलब्ध नहीं हैं, लेकिन जनगणना रिपोर्ट के अनुसार, 1901 और 1941 के बीच अकेले कृषि पर निर्भर जनसंख्या का प्रतिशत 63 प्रतिशत से बढ़कर 70 प्रतिशत हो गया।

कृषि पर यह बढ़ता दबाव ब्रिटिश शासन के तहत भारत में अत्यधिक गरीबी का एक प्रमुख कारण था। वास्तव में, भारत अब ब्रिटेन के निर्माण का एक कृषि उपनिवेश बन गया, जिसे अपने उद्योगों के लिए कच्चे माल के स्रोत के रूप में इसकी आवश्यकता थी। सूती कपड़ा उद्योग की तुलना में कहीं अधिक परिवर्तन नहीं हुआ। जबकि भारत सदियों से दुनिया में कपास के सामान का सबसे बड़ा निर्यातक था, अब यह ब्रिटिश कपास उत्पादों के आयातक और कच्चे कपास के निर्यातक में बदल गया था।

ब्रिटिश शासन के दौरान भारतीय कृषि व्यवस्था में बड़े बदलाव हुए। पारंपरिक कृषि को बदलने के लिए नई नीतियाँ लागू की गईं, जिनका उद्देश्य ब्रिटिश हितों को साधना था। ज़मींदारी प्रथा और रैयतवाड़ी व्यवस्था जैसी नीतियों ने किसानों की स्थिति को खराब कर दिया। ज़मींदारी प्रथा के तहत, किसानों से भारी कर वसूले जाते थे, जिससे वे कर्ज में डूबते चले गए। इसके अलावा, किसानों को नकदी फसलों की खेती करने के लिए मजबूर किया गया, जिससे खाद्य सुरक्षा प्रभावित हुई और भुखमरी की स्थितियाँ पैदा हुईं।

ब्रिटिश शासन के तहत किसान भी प्रगतिशील रूप से गरीब था। यद्यपि वह अब आंतरिक युद्धों से मुक्त था, उसकी भौतिक स्थिति बिगड़ गई और वह लगातार गरीबी में डूब गया। बंगाल में ब्रिटिश शासन की शुरुआत में, क्लाइव और वॉरेन हेस्टिंग्स की सबसे बड़ी भूमि राजस्व निकालने की नीति ने इतनी तबाही मचाई थी कि यहां तक कि कॉर्नवॉलिस ने भी शिकायत की थी कि बंगाल का एक तिहाई हिस्सा जंगली जानवरों द्वारा बसाया गया था। इसने ब्रिटिश - भारतीय प्रशासन की जरूरतों को पूरा करने, इंग्लैंड को प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से श्रद्धांजलि देने और ब्रिटिश व्यापार और उद्योग के हितों की सेवा करने के लिए अपनी पूरी आय को समर्पित कर दिया। यहां तक कि कानून और व्यवस्था का रखरखाव भी किसान के बजाय व्यापारी और साहूकार को फायदा पहुंचाता है।

अत्यधिक भूमि राजस्व मांग के हानिकारक प्रभावों को इसके संग्रह के कठोर तरीके से और अधिक बढ़ाया गया। भू-राजस्व को निश्चित तिथियों पर तुरंत भुगतान करना पड़ता था, भले ही फसल सामान्य से कम हो या पूरी तरह से विफल

रही हो। लेकिन बुरे वर्षों में किसान को राजस्व मांग को पूरा करना मुश्किल हो गया, भले ही वह अच्छे वर्षों में ऐसा करने में सक्षम हो। अपनी पूरी आय को समर्पित कर दिया। यहां तक कि कानून और व्यवस्था का रखरखाव भी किसान के बजाय व्यापारी और साहूकार को फायदा पहुंचाता है।

ब्रिटिश काल में भारतीय व्यापार नीति पूरी तरह से ब्रिटिश हितों को साधने के लिए तैयार की गई थी। भारत को कच्चे माल के स्रोत और ब्रिटिश उत्पादों के बाजार के रूप में विकसित किया गया। इस कारण भारतीय व्यापारियों को भारी नुकसान हुआ। भारतीय बाजारों में ब्रिटिश वस्त्र और अन्य उत्पादों का दबदबा हो गया, जिससे स्थानीय व्यापारियों की स्थिति कमजोर हो गई। इसके अलावा, ब्रिटिशों ने भारतीय व्यापारिक रास्तों पर भी नियंत्रण कर लिया, जिससे भारतीय व्यापारियों की स्वतंत्रता समाप्त हो गई।

धीरे-धीरे रैयतवाड़ी और महलवाड़ी क्षेत्रों में खेती करने वाले कर्ज में डूब गए और अधिक से अधिक भूमि साहूकारों, व्यापारियों, अमीर किसानों और अन्य धनवान वर्गों के हाथों में चली गई। इस प्रक्रिया को जमींदारी क्षेत्रों में दोहराया गया था जहाँ किरायेदारों ने अपने किरायेदारी के अधिकार खो दिए थे और उन्हें जमीन से बेदखल कर दिया गया था या साहूकार के मातहत बन गए थे। आपदा और अकाल के समय खेती करने वालों से भूमि के हस्तांतरण की प्रक्रिया तेज हो गई थी। भारतीय किसान के पास शायद ही कभी महत्वपूर्ण समय के लिए कोई बचत थी और जब भी फसलें विफल हुईं, वह साहूकार पर न केवल भू-राजस्व का भुगतान करने के लिए बल्कि अपने और अपने परिवार को खिलाने के लिए वापस आ गया। उन्नीसवीं सदी के अंत तक, साहूकार ग्रामीण इलाकों का एक बड़ा अभिशाप बन गया था और ग्रामीण लोगों की बढ़ती गरीबी का एक महत्वपूर्ण कारण था। 1911 में कुल ग्रामीण कर्ज 300 करोड़ रुपये आंका गया था। 1937 तक यह 1800 करोड़ रुपये था। पूरी प्रक्रिया एक दुष्चक्र बन गई। ब्याज की दरें उपयोग और सार्वजनिक राय द्वारा तय की गई थीं। इसके अलावा, वह देनदार की जमीन को जब्त नहीं कर सका वह अधिक से अधिक ऋणी के व्यक्तिगत प्रभाव जैसे कि आभूषण, या उसकी खड़ी फसल के हिस्से को अपने कब्जे में ले सकता था। भूमि की हस्तांतरणीयता शुरू करने से ब्रिटिश राजस्व प्रणाली ने साहूकार या अमीर किसान को जमीन पर कब्जा करने में सक्षम बनाया। यहां तक कि अंग्रेजों द्वारा अपनी कानूनी प्रणाली और पुलिस द्वारा स्थापित शांति और सुरक्षा का लाभ मुख्य रूप से साहूकार को मिलता था, जिसके हाथ में कानून भारी शक्ति रखता था य उन्होंने मुकदमे की महंगी प्रक्रिया को अपने पक्ष में मोड़ने के लिए और पुलिस को अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिए शक्ति का इस्तेमाल किया। इसके अलावा, साक्षर और चतुर साहूकार किसान की अज्ञानता और अशिक्षा का फायदा उठाकर अनुकूल न्यायिक निर्णय प्राप्त करने के लिए कानून की जटिल प्रक्रियाओं को मोड़ सकता है। ब्रिटिश शासन का भारतीय अर्थव्यवस्था पर व्यापक और नकारात्मक प्रभाव पड़ा। कृषि, उद्योग, और व्यापार सभी क्षेत्रों में भारतीयों को आर्थिक रूप से कमजोर किया गया और ब्रिटिश साम्राज्य को मजबूत किया गया। इन प्रभावों का असर भारत की अर्थव्यवस्था पर दीर्घकालिक रूप से पड़ा और स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भी यह समस्याएँ भारतीय समाज और अर्थव्यवस्था के सामने चुनौती बनी रहीं।

निष्कर्ष

ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन के दौरान भारत की पारंपरिक कृषि अर्थव्यवस्था का पतन आधुनिकीकरण का आकस्मिक परिणाम नहीं था, बल्कि जानबूझकर और शोषणकारी आर्थिक नीतियों का प्रत्यक्ष परिणाम था। ब्रिटिश प्रशासन ने साम्राज्यवादी हितों की सेवा के लिए भारत की कृषि प्रणालियों को व्यवस्थित रूप से पुनर्गठित किया, भारतीय किसानों की भलाई पर ब्रिटिश उद्योगों के लिए राजस्व निष्कर्षण और कच्चे माल की खरीद को प्राथमिकता दी। स्थायी बंदोबस्त, रैयतवाड़ी और महलवाड़ी जैसी दमनकारी भूमि राजस्व प्रणालियों की शुरुआत ने अनुपस्थित जमींदारों का एक वर्ग

बनाया और किसानों को बाजार में उतार-चढ़ाव, फसल विफलताओं और अकाल की दया पर छोड़ दिया, जिनके पास बहुत कम या कोई संस्थागत समर्थन नहीं था। ग्रामीण आजीविका को और अस्थिर कर दिया, खाद्य सुरक्षा की जगह निर्यात-उन्मुख उत्पादन ने ले ली। इस परिवर्तन ने, पारंपरिक ग्रामीण उद्योगों के विऔद्योगीकरण के साथ मिलकर, कृषि भूमि पर दबाव बढ़ा दिया और लाखों लोगों को गरीबी में धकेल दिया। अकाल अधिक बार और गंभीर हो गए, न केवल प्राकृतिक कारणों से बल्कि प्रणालीगत उपेक्षा और उत्तरदायी शासन की कमी के परिणामस्वरूप। जैसा कि आर.सी. दत्त और दादाभाई नौरोजी से लेकर समकालीन आर्थिक इतिहासकारों और उत्तर-औपनिवेशिक सिद्धांतकारों तक के विद्वानों ने उजागर किया है, ब्रिटिश आर्थिक नीतियों ने भारत की कृषि अर्थव्यवस्था की बुनियाद को ही खत्म कर दिया। हालांकि कुछ क्षेत्रीय विविधताएं और विकास के सीमित उदाहरण हुए, लेकिन वे आदर्श के बजाय अपवाद थे और औपनिवेशिक शासन के कारण व्यापक सामाजिक-आर्थिक गिरावट को दूर करने में विफल रहे। इन नीतियों के दीर्घकालिक परिणाम बहुत गंभीर थे: ग्रामीण गरीबी, विषम भूमि स्वामित्व पैटर्न और एक नाजुक कृषि क्षेत्र जो स्वतंत्रता के बाद भी संघर्ष करता रहा। इस ऐतिहासिक पतन को समझना न केवल भारत के अतीत की व्याख्या करने के लिए बल्कि ग्रामीण विकास, कृषि सुधार और आर्थिक न्याय के उद्देश्य से समकालीन नीति को सूचित करने के लिए भी आवश्यक है। औपनिवेशिक भारत की कृषि गिरावट से मिले सबक आधुनिक भारत में अधिक न्यायसंगत और टिकाऊ ग्रामीण अर्थव्यवस्था बनाने की खोज में बहुत प्रासंगिक हैं।

संदर्भ

- [1] चंद्रा, बी. (1988). भारत का स्वतंत्रता संग्राम। नई दिल्ली: पेंगुइन बुक्स।
- [2] चंद्रा, बी. (1972). आधुनिक भारत। नई दिल्ली: एनसीईआरटी।
- [3] दत्त, आर.सी. (1901). विक्टोरियन युग में भारत का आर्थिक इतिहास। लंदन: केगन पॉल, ट्रेच, टुबनर एंड कंपनी।
- [4] गाडगिल, एम., और गुहा, आर. (1992). यह विदारित भूमि: भारत का एक पारिस्थितिक इतिहास। दिल्ली: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
- [5] गुहा, आर. (1982). सबाल्टर्न स्टडीज I: दक्षिण एशियाई इतिहास और समाज पर लेखन। दिल्ली: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
- [6] नौरोजी, डी. (1901). भारत में गरीबी और गैर-ब्रिटिश शासन। लंदन: स्वान सोनेंशिन एंड कंपनी।
- [7] रॉय, टी. (2000)। भारत का आर्थिक इतिहास 1857-1947। नई दिल्ली: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
- [8] चटर्जी, पी. (1993)। राष्ट्र और उसके टुकड़े: औपनिवेशिक और उत्तर औपनिवेशिक इतिहास। प्रिंसटन: प्रिंसटन यूनिवर्सिटी प्रेस।
- [9] टॉमलिंग्सन, बी.आर. (1993)। आधुनिक भारत की अर्थव्यवस्था, 1860-1970। कैम्ब्रिज: कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस।
- [10] वाशब्रुक, डी. ए. (1997)। औपनिवेशिक भारत में कृषि का व्यावसायीकरण: "शुष्क दक्षिण" में उत्पादन, निर्वाह और प्रजनन, लगभग 1870-1930। आधुनिक एशियाई अध्ययन, 28(1), 129-164।
- [11] विपीन चन्द्रा, भारत का स्वतंत्रता संघर्ष, हि.मा.कार्या.निदे., 1995, नई दिल्ली
- [12] बी. एल. गोयल, यशपाल, आधुनिक भारत का इतिहास, एस. चन्द्र, 1981 <http://www.allstudyjournal.com>
- [13] द्विजेंद्र त्रिपाठी, 1991, कांग्रेस एंड दि इंडस्ट्रियलिस्ट (1885-1947), इन बिजनेस एंड पॉलिटिक्स इन इंडिया ए हिस्टोरिकल पर्सपेक्टिव, संपा. डी. त्रिपाठी

- [14] आदित्य मुखर्जी 1986, दि इंडियन कैपिटलिस्ट क्लास : आस्पेक्टस् ऑफ इटस् इकोनॉमिक, इकोनॉमिक, पॉलिटिकल एंड आइडियोलॉजिकल डवलपमेंट इन दि कॉलोनियल पीरियड, 1927 - 47, इन सिटुएटिंग इंडियन हिस्ट्री फॉर सर्वपल्ली गोपाल, संपा. एस. भट्टाचार्य एंड आर थापर
- [15] बिपिन चन्द्र 1979, नेशनलिज्म एंड कॉलोनियलिज्म इन मॉडर्न इंडिया
- [16] अनंतिम जनसंख्या योग उत्तर प्रदेश ग्रामीण शहरी वितरण, (2011) भारत की जनगणना.
- [17] रहमान, ए. (2004) उत्तर प्रदेश के रोहिलखंड क्षेत्र में कृषि के सतत विकास के लिए प्रौद्योगिकी की भूमिका, पृष्ठ संख्या 67
- [18] श्रीवास्तव, वी. के. (1988) दक्षिण एशिया में वाणिज्यिक गतिविधियाँ और ग्रामीण विकास एक भौगोलिक वी.के. श्रीवास्तव में, दक्षिण एशिया में वाणिज्यिक गतिविधियाँ और ग्रामीण विकास एक भौगोलिक, पृष्ठ संख्या 496, भारतरू कॉन्सेप्ट पब्लिशिंग कंपनी।
- [19] सिंह, आर. (1971) भारतरू एक क्षेत्रीय भूगोल. (आर. सिंह, एड.) वाराणसी, उत्तर प्रदेश, भारतरू नेशनल ज्योग्राफिक सोसाइटी ऑफ इंडिया, पृष्ठ संख्या 90।
- [20] सिंह, एस. (2019) उत्तर प्रदेश, भारत में कृषि उत्पादन के निर्धारकरू एक क्षेत्रीय विश्लेषण, रिसर्च रिव्यू इंटरनेशनल जर्नल ऑफ मल्टीडिसिप्लिनरी, पृष्ठ संख्या 11
- [21] त्रिपाठी, ए. (2014)। सामाजिक-आर्थिक पिछड़ापन जलवायु परिवर्तन के प्रति संवेदनशीलता बढ़ाता हैरू उत्तर प्रदेश से साक्ष्य पृष्ठ संख्या 45.
- [22] वी.के. भाटिया, एस.आर. (2003-04) छोटे क्षेत्रों में सामाजिक-आर्थिक विकास का मूल्यांकन, आईएसएसआरआई परिसर, लाइब्रेरी एवेन्यू, पूसा, नई दिल्लीरू भारतीय कृषि सांख्यिकी सोसायटी, पृष्ठ संख्या 291 ।